बालबोध पाठमाला

भाग 3

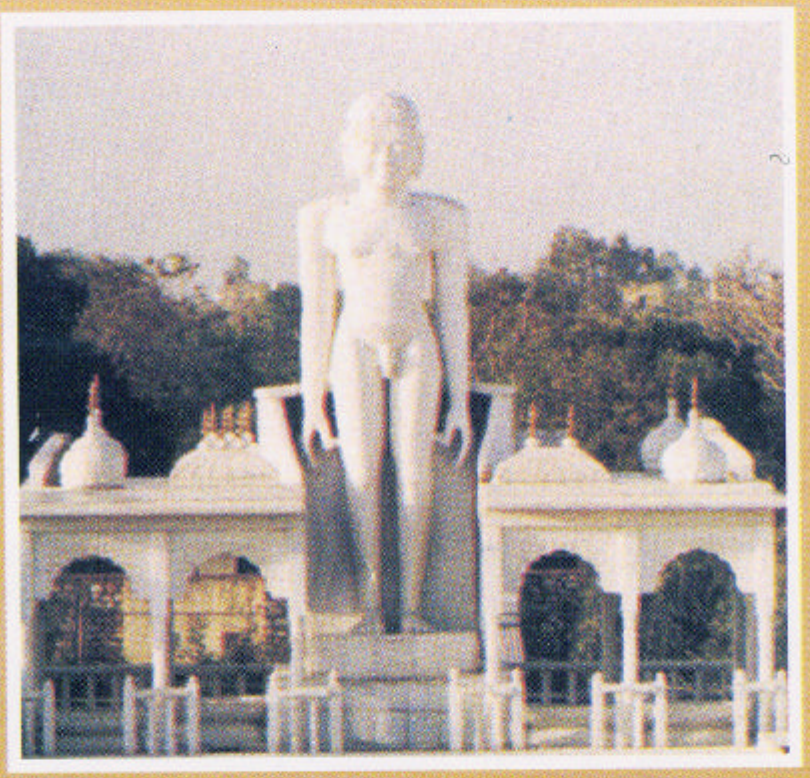

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बालबोध पाठमाला भाग ३

(श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित)

लेखक व सम्पादक :

डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी.

महामंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

प्रकाशक :

मगनमल सौभागमल पाटनी फैमिली चेरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हिन्दी :

प्रथम बीस संस्करण	:	1 लाख 57 हजार 100
(31 मार्च 1969 से अद्यतन)		
इक्कीसवाँ संस्करण	:	5 हजार
(12 जुलाई, 2006)		
योग	:	1 लाख 62 हजार 100

अन्य भाषाओं में प्रकाशित

गुजराती : प्रथम तीन संस्करण	:	13 हजार
मराठी : प्रथम पाँच संस्करण	:	23 हजार 200
कन्नड़ : प्रथम दो संस्करण	:	4 हजार
तमिल : प्रथम संस्करण	:	2 हजार 500
बंगला : प्रथम संस्करण	:	1 हजार
अंग्रेजी : प्रथम दो संस्करण	:	8 हजार
महायोग	:	2 लाख 13 हजार 800

मूल्य : **तीन रुपये**

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईसगोदाम, जयपुर

विषय-सूची

क्रम	नाम पाठ	पृष्ठ
1.	देव दर्शन	04
2.	पंचपरमेष्ठी	07
3.	श्रावक के अष्टमूलगुण	11
4.	इन्द्रियाँ	14
5.	सदाचार	18
6.	द्रव्य-गुण-पर्याय	21
7.	भगवान नेमिनाथ	26
8.	जिनवाणी स्तुति	29

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Dakshaben Sanghvi, Geneva, Switzerland who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of BalbodhPathmala – Part 3 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	23 May 2008	First electronic version

संकल्प —

'भगवान बनेंगे'

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे।
सप्तभयों से नहीं डरेंगे॥

सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे।
जीव-अजीव पहिचान करेंगे॥

स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे।
निजानन्द का पान करेंगे॥

पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे।
गुरुजन का सम्मान करेंगे॥

जिनवाणी का श्रवण करेंगे।
पठन करेंगे, मनन करेंगे॥

रात्रि भोजन नहीं करेंगे।
बिना छना जल काम न लेंगे॥

निज स्वभाव को प्राप्त करेंगे।
मोह भाव का नाश करेंगे॥

रागद्वेष का त्याग करेंगे।
और अधिक क्या? बोलो बालक!

भक्त नहीं, भगवान बनेंगे॥

पाठ पहला

देव-दर्शन

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥
पाये अनंते दुख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर॥
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पान कर॥1॥
तब पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥
रचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा॥
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित्त पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै॥2॥
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ॥
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आश्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपकों निर्जरूँ॥3॥

देव दर्शन का सारांश

हे वीतराग सर्वज्ञ प्रभो ! आज मैंने महान पुण्योदय से आपके दर्शन प्राप्त किये हैं। आज तक आपको जाने बिना और अपने गुणों को पहिचाने बिना अनंत दु:ख पाये हैं।

मैंने इस संसार को अपना जानकर और सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहे गये, आत्मा का हित करने वाले वीतराग धर्म को पहिचाने बिना अनंत दु:ख प्राप्त किये हैं। आज तक मैंने संसार बढ़ाने वाले और सच्चे सुख का नाश करने वाले पंचेन्द्रिय के विषयों में सुख मान कर, सुख के खजाने स्वपर-भेदविज्ञान रूप अमृत का पान नहीं किया है॥1॥

पर आज आपके चरण मेरे हृदय में बसे हैं, उन्हें देखकर कुबुद्धि और मोह भाग गये हैं। आत्मज्ञान की कला हृदय में जागृत हो गई है और मेरी रुचि आत्महित में लग गई है। सत्समागम में मेरा मन लगने लगा है। अत: मेरे मन में यह भावना जागृत हो गई है कि आपकी भक्ति ही में रमा रहूँ।

हे भगवन् ! यदि वचन बोलूँ तो आत्महित करने वाले प्रिय वचन ही बोलूँ। मेरा चित्त गुणीजनों के गान में ही रहे अथवा आत्महित के निरूपक शास्त्रों के अभ्यास में ही लगा रहे। मेरा मन दोषों के चिंतन और वाणी दोषों के कथन से दूर रहे॥2॥

मेरे मन में यह भाव जग रहे हैं कि वह दिन कब आयेगा जब मैं हृदय में समता भाव धारण करके, बारह भावनाओं का चिंतवन करके तथा ममतारूपी भूत (पिशाच) को भगाकर वन में जाकर मुनि दीक्षा धारण करूँगा। वह दिन कब आयेगा जब मैं दिगम्बर वेश धारण करके अट्ठाईस मूलगुण धारण करूँगा, बाईस परीषहों पर विजय प्राप्त करूँगा और दश धर्मों को धारण करूँगा, सुख देने वाले बारह प्रकार के तप तपूँगा और आश्रव और बंध भावों को त्याग नये कर्मों को रोककर संचित कर्मों की निर्जरा कर दूँगा॥3॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ।।
कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ।।
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ।।4।।

वह धन्य घड़ी कब होगी जब मैं अपने में ही रम जाऊँगा। कर्ता-कर्म के भेद का भी अभाव करता हुआ राग-द्वेष दूर करूँगा और आत्मा को पवित्र बना लूँगा – जिससे आत्मा में क्षायिक चारित्र प्रकट करके अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य से युक्त हो जाऊँगा। आनन्दकन्द जिनेन्द्रपद प्राप्त कर लूँगा। मेरा वह दिन कब आयेगा जब इस दुःखरूपी भवसागर को पार कर अमर पद प्राप्त करूँगा।।4।।

उक्त स्तुति में देव-दर्शन से लेकर देव (भगवान) बनने तक की भावना ही नहीं आई है किन्तु भक्त से भगवान बनने की पूरी प्रक्रिया ही आ गई है।

प्रश्न –

1. उक्त स्तुति में कोई भी एक छन्द जो तुम्हें रुचिकर हुआ हो, अर्थ सहित लिखिये एवं रुचिकर होने का कारण भी दीजिए।

———

पाठ दूसरा

पंच परमेष्ठी

णमो *अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं॥

यह पंच नमस्कार मंत्र है। इसमें सबसे पहिले पूर्ण वीतरागी और पूर्ण ज्ञानी अरहंत भगवानों को और सिद्ध भगवानों को नमस्कार किया गया है। उसके बाद वीतराग मार्ग में चलने वाले मुनिराजों को नमस्कार किया गया है जिनमें आचार्य मुनिराज, उपाध्याय मुनिराज और सामान्य मुनिराज सब आ जाते हैं।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनको पंच परमेष्ठी कहते हैं। अरहंतादिक परमपद हैं और जो परमपद में स्थित हों, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। पाँच प्रकार के होने से उन्हें पंच परमेष्ठी कहते हैं।

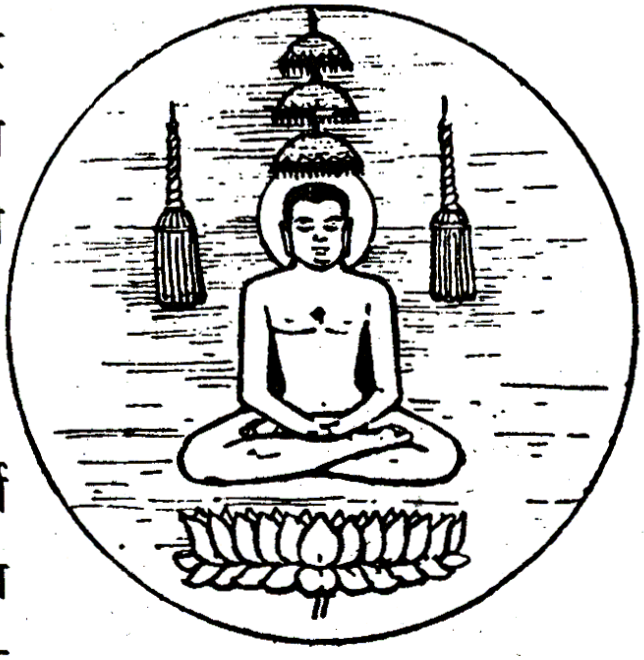

अरहंत परमेष्ठी

अरहंत

जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार कर, निज स्वभाव साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय करके

---

* धवल में 'अरिहंताणं' व अरहंताणं दोनों ही का प्रयोग हुआ है।

अनंत चतुष्टय (अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य) रूप विराजमान हुए वे अरहंत हैं।

शास्त्रों में अरहंत के 46 गुणों (विशेषणों) का वर्णन है। उनमें कुछ विशेषण तो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ आत्मा से। 46 (छयालीस) गुणों में 10 तो जन्म के अतिशय हैं, जो शरीर से संबंध रखते हैं। 10 केवलज्ञान के अतिशय हैं, वे भी बाह्य पुण्य सामग्री से संबंधित हैं तथा 14 देवकृत अतिशय तो स्पष्ट देवों द्वारा किए हुए हैं ही। ये सब तीर्थंकर अरहंतों के ही होते हैं, सब अरहंतों के नहीं। आठ प्रातिहार्य भी बाह्य विभूति हैं। किन्तु अनन्त चतुष्टय आत्मा से संबंध रखते हैं, अतः वे प्रत्येक अरहंत के होते हैं। अतः निश्चय से वे ही अरहंत के गुण हैं।

सिद्ध

जो गृहस्थ अवस्था का त्यागकर, मुनिधर्म साधन द्वारा चार घाति कर्मों का नाश होने पर अनंत चतुष्टय प्रकट करके कुछ समय बाद अघाति कर्मों के नाश होने पर समस्त अन्य द्रव्यों का संबंध छूट जाने पर पूर्ण मुक्त हो गये हैं; लोक के अग्रभाग में किंचित् न्यून पुरुषाकार विराजमान हो गये हैं, जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने से समस्त आत्मिक गुण प्रकट हो गये हैं; वे सिद्ध हैं। उनके आठ गुण कहे गये हैं —

सिद्ध परमेष्ठी

समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

1. क्षायिक सम्यक्त्व
2. अनंत दर्शन
3. अनंत ज्ञान
4. अगुरुलघुत्व
5. अवगाहनत्व
6. सूक्ष्मत्व
7. अनंतवीर्य
8. अव्याबाध

आचार्य, उपाध्याय और साधुओं का सामान्य स्वरूप

आचार्य, उपाध्याय और साधु सामान्य से साधुओं में ही आ जाते हैं। जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म अंगीकार करके अंतरंग में शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आप रूप अनुभव करते हैं; अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं, जिनके कदाचित् मंदराग के उदय में शुभोपयोग भी होता है, परन्तु उसे भी हेय मानते हैं, तीव्र कषाय का अभाव होने से अशुभोपयोग का तो अस्तित्व ही नहीं रहता है – ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु हैं।

आचार्य

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की अधिकता से प्रधान पद प्राप्त करके मुनिसंघ के नायक हुए हैं तथा जो मुख्यपने तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न रहते हैं, पर कभी-कभी रागांश के उदय से करुणाबुद्धि हो तो धर्म के लोभी अन्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं, दीक्षा लेने वाले को योग्य जान दीक्षा देते हैं, अपने दोष प्रकट करने वाले को प्रायश्चित्त विधि से शुद्ध करते हैं – ऐसा आचरण करने और कराने वाले आचार्य कहलाते हैं।

आचार्य परमेष्ठी

उपाध्याय

जो बहुत जैन शास्त्रों के ज्ञाता होकर संघ में पठन-पाठन के अधिकारी हुए हैं तथा जो समस्त शास्त्रों का सार आत्मस्वरूप में एकाग्रता है, अधिकतर तो उसमें लीन रहते हैं, कभी-कभी कषायांश के उदय से यदि उपयोग वहाँ स्थिर न रहे तो उन शास्त्रों को स्वयं पढ़ते हैं, औरों को पढ़ाते हैं – वे उपाध्याय हैं। ये मुख्यतः द्वादशाङ्ग के पाठी होते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी

साधु

आचार्य, उपाध्याय को छोड़कर अन्य समस्त जो मुनिधर्म के धारक हैं और आत्मस्वभाव को साधते हैं, बाह्य 28 मूलगुणों को अखंडित पालते हैं, समस्त आरंभ और अंतरंग बहिरंग-परिग्रह से रहित होते हैं, सदा ज्ञान-ध्यान में लवलीन रहते हैं। सांसारिक प्रपंचों से सदा दूर रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

साधु परमेष्ठी

इसप्रकार पंच परमेष्ठी का स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है, अतः वे पूज्य हैं।

प्रश्न –

1. पंच परमेष्ठी किन्हें कहते हैं ?
2. अरहंत और सिद्ध परमेष्ठियों का स्वरूप बतलाइये एवं उनका अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. सामान्य से साधुओं का स्वरूप बताकर आचार्य साधुओं और उपाध्याय साधुओं का स्वरूप बतलाइये।_____

पाठ तीसरा

श्रावक के अष्ट मूलगुण

प्रबोध – क्यों भाई ! इस शीशी में क्या है ?

सुबोध – शहद।

प्रबोध – क्यों ?

सुबोध – वैद्यजी ने दवाई दी थी और कहा था कि शहद या चीनी (शक्कर) की चासनी में खाना। अतः बाजार से शहद लाया हूँ।

प्रबोध – तो क्या तुम शहद खाते हो ? मालूम नहीं ? यह तो महान् अपवित्र पदार्थ है। मधु-मक्खियों का मल है और बहुत से त्रस-जीवों के घात से उत्पन्न है। इसे कदापि नहीं खाना चाहिए।

सुबोध – भाई, हम तो साधारण श्रावक हैं, कोई व्रती थोड़े ही हैं।

प्रबोध – साधारण श्रावक भी अष्ट मूलगुण का धारी और सप्त व्यसन का त्यागी होता है। मधु (शहद) का त्याग अष्ट मुलगुणों में आता है।

सुबोध – मूलगुण किसे कहते हैं और अष्ट मूलगुण में क्या-क्या आता है ?

प्रबोध — निश्चय से तो समस्त पर-पदार्थों से दृष्टि हटाकर अपनी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता ही मुमुक्षु श्रावक के मूलगुण हैं; पर व्यवहार से मद्य-त्याग, मांस-त्याग, मधु-त्याग और पाँच उदुम्बर फलों के त्याग को अष्ट मूलगुण कहते हैं।

सुबोध — मधु-त्याग तो शहद के त्याग को कहते हैं, पर मद्य-त्याग किसे कहते हैं ?

प्रबोध — शराब वगैरह मादक वस्तुओं के सेवन करने का त्याग करना मद्य-त्याग है। यह पदार्थों को सड़ा-गलाकर बनाई जाती है, अतः इसके सेवन से लाखों जीवों का घात होता हैतथा नशा उत्पन्न करने के कारण विवेक समाप्त होकर आदमी पागल-सा हो जाता है, अतः इसका त्याग करना भी अति आवश्यक है।

सुबोध — और मांस-त्याग क्यों आवश्यक है ?

प्रबोध — त्रस जीवों के घात (हिंसा) बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती है तथा मांस में निरन्तर त्रस जीवों की उत्पत्ति भी होती रहती है। अतः मांस खाने वाला असंख्य त्रस जीवों का घात करता है, उसके परिणाम क्रूर हो जाते हैं। आत्महित के इच्छुक प्राणी को मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। अण्डा भी त्रस जीवों का शरीर होने से मांस ही है। अतः उसे भी नहीं खाना चाहिए।

सुबोध — और पंच उदुम्बर फल कौनसे हैं ?

प्रबोध — बड़ का फल, पीपल का फल, कठूमर (गूलर) और पाकरफल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

इन पाँच जाति के फलों को उदुम्बर फल कहते हैं। इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं, अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन्हें भी न खावे।

सुबोध – मैंने प्रवचन में सुना था कि आत्मज्ञान बिना तो इन सबका त्याग कार्यकारी नहीं है, अतः हमें पहिले तो आत्मज्ञान करना चाहिए न ?

प्रबोध – भाई, आत्मज्ञान तो सच्चा मुक्ति का मार्ग है ही, पर यह बताओ क्या शराबी कबाबी को भी आत्मज्ञान हो सकता है ? अतः आत्मज्ञान की अभिलाषा रखने वाले अष्ट मूलगुण धारण करते हैं।

प्रश्न –

1. मद्य-त्याग, मांस-त्याग और मधु-त्याग को स्पष्ट कीजिए ?
2. पंच उदुम्बर फल कौन-कौन-से हैं और उन्हें क्यों नहीं खाना चाहिए ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पाठ चौथा

इन्द्रियाँ

बेटी — माँ ! पिताजी जैन साहब क्यों कहलाते हैं ?

माँ — जैन हैं, इसलिए वे जैन कहलाते हैं। जिन का भक्त सो जैन या जिन-आज्ञा को माने से जैन। जिनदेव के बताये मार्ग पर चलने वाला ही सच्चा जैन है।

बेटी — और जिन क्या होता है ?

माँ — जिसने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीता वही जिन है।

बेटी — तो इन्द्रियाँ क्या हमारी शत्रु हैं जो उन्हें जीतना है ? वे तो हमारे ज्ञान में सहायक हैं। जो शरीर के चिह्न आत्मा का ज्ञान कराने में सहायक हैं वे ही तो इन्द्रियाँ हैं।

माँ — हाँ बेटी ! संसारी जीव को इन्द्रियाँ ज्ञान के काल में भी निमित्त होती हैं, पर एक बात यह भी तो है कि ये विषय-भोगों में उलझाने में भी तो निमित्त हैं। अत: इन्हें जीतने वाला ही भगवान बन पाता है।

बेटी — तो इन्द्रियों के भोगों को छोड़ना चाहिए, इन्द्रिय ज्ञान को तो नहीं ?

माँ – तुम जानती हो कि इन्द्रियाँ कितनी हैं और किस ज्ञान में निमित्त हैं ?

बेटी – हाँ ! वे पाँच होती हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण।

माँ – अच्छा बोलो स्पर्शन इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

बेटी – जिससे छू जाने पर हल्का-भारी, रूखा-चिकना, कड़ा-नरम और ठंडा-गरम का ज्ञान होता है, उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं।

माँ – जानता तो आत्मा ही है न ?

बेटी – हाँ ! हाँ !! इन्द्रियाँ तो निमित्त मात्र हैं। इसीप्रकार जिससे खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला और चरपरा स्वाद जाना जाता है, वही रसना इन्द्रिय है। जीभ को ही रसना कहते हैं।

माँ – और स्पर्शन क्या है ?

बेटी – स्पर्शन तो सारा शरीर ही है। हाँ ! और जिससे हम सूंघते हैं, वही नाक तो घ्राण इन्द्रिय कहलाती है, यह सुगन्ध और दुर्गन्ध के ज्ञान में निमित्त होती है।

माँ – और रंग के ज्ञान में निमित्त कौन है ?

बेटी – आँख ! इसी को चुक्ष कहते हैं। जिससे काला, नीला, पीला, लाल और सफेद आदि रंगों का ज्ञान हो, वही तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

चक्षु इन्द्रिय है और जिनसे हम सुनते हैं, वे ही कान हैं; जिन्हें कर्ण या श्रोत्र इन्द्रिय कहा जाता है।

माँ — तू तो सब जानती है, पर यह बता कि ये पाँचों ही इन्द्रियाँ किस वस्तु के जानने में निमित्त हुईं ?

बेटी — स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और आवाज व शब्दों के जानने में ही निमित्त हुईं।

माँ — स्पर्श, रस, गंध और वर्ण तो पुद्गल के गुण हैं, अतः इनके निमित्त से तो सिर्फ पुद्गल का ही ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान तो हुआ नहीं।

बेटी — आवाज व शब्दों का ज्ञान भी तो हुआ ?

माँ — वह भी तो पुद्गल की ही पर्याय है। आत्मा तो अमूर्तिक चेतन पदार्थ है, उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और आवाज शब्द हैं ही नहीं। अतः इन्द्रियाँ उसके जानने में निमित्त नहीं हो सकतीं।

बेटी — न हो तो न सही। जिसके जानने में निमित्त है, वही ठीक।

माँ — कैसे ? आत्मा का हित तो आत्मा के जानने में है, अतः इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ हुआ। जिसप्रकार इन्द्रिय सुख (भोग) हेय है, उसी प्रकार मात्र पर को जानने वाला इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ है तथा अतीन्द्रिय आनन्द एवं अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है।

प्रश्न –

1. जैन किसे कहते हैं ?
2. इन्द्रियाँ किसे कहते हैं ? वे कितनी हैं ? नाम सहित बताइये।
3. इन्द्रियाँ किसको जानने में निमित्त हैं ?
4. क्या इन्द्रियाँ मात्र ज्ञान में ही निमित्त हैं ?
5. यदि इन्द्रियाँ ज्ञान में मात्र निमित्त हैं तो जानता कौन है ?
6. इन्द्रिय ज्ञान तुच्छ क्यों है ?

पाठ में आये हुए सूत्रात्मक सिद्धान्त-वाक्य –

1. जिसने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों को जीता सो जिन है।
2. जिन का भक्त या जिन आज्ञा को माने सो जैन है।
3. संसारी आत्मा को ज्ञान में निमित्त शरीर के चिह्न विशेष ही इन्द्रियाँ हैं।
4. जिससे छू जाने पर हल्का-भारी, रूखा-चिकना, ठंडा-गरम और कड़ा-नरम का ज्ञान हो, वही स्पर्शन इन्द्रिय है।
5. जो खट्टा, मीठा, खारा, चरपरा आदि स्वाद जानने में निमित्त हो, वह जीभ ही रसना इन्द्रिय कहलाती है।
6. सुगन्ध और दुर्गन्ध जानने में निमित्त रूप नाक ही घ्राण इन्द्रिय है।
7. रंगों के ज्ञान में निमित्त रूप आँख ही चक्षु इन्द्रिय है।
8. जो आवाज के ज्ञान में निमित्त हो, वही कर्ण इन्द्रिय है।
9. ये इन्द्रियाँ मात्र पुद्गल के ज्ञान में ही निमित्त हैं, आत्मज्ञान में नहीं।
10. इन्द्रिय सुख की भांति इन्द्रिय ज्ञान भी तुच्छ है। अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञान ही उपादेय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पाठ पाँचवाँ

सदाचार

(भक्ष्याभक्ष्य विचार)

सुबोध – क्यों भाई प्रबोध ! कहाँ जा रहे हो ? चलो, आज तो चौराहे पर आलू की चाट खायेंगे। बहुत दिनों से नहीं खाई है।

प्रबोध – चौराहे पर और आलू की चाट! हमें कोई भी चीज बाजार में नहीं खाना चाहिए और आलू की चाट भी कोई खाने की चीज है? याद नहीं, कल गुरुजी ने कहा था कि आलू तो अभक्ष्य है?

सुबोध – यह अभक्ष्य क्या होता है, मेरी तो समझ में नहीं आता। पाठशाला में पण्डितजी कहते हैं – यही नहीं खाना चाहिए, वह नहीं खाना चाहिए। औषधालय में वैद्यजी कहते हैं – यह नहीं खाना, वह नहीं खाना। अपने को तो कुछ पसंद नहीं। जो मन में आए सो खाओ और मौज से रहो।

प्रबोध – जो खाने योग्य सो भक्ष्य और जो खाने योग्य नहीं सो अभक्ष्य है। यही तो कहते हैं कि अपनी आत्मा इतनी पवित्र बनाओ कि उसमें अभक्ष्य के खाने का भाव (इच्छा) आवे ही नहीं। यदि पण्डितजी कहते हैं कि अभक्ष्य का भक्षण मत करो तो तुम्हारे हित की ही कहते हैं क्योंकि अभक्ष्य खाने से और खाने के भाव से आत्मा का पतन होता है।

सुबोध – तो कौन-कौन से पदार्थ अभक्ष्य हैं ?

प्रबोध – जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो या बहुत से स्थावर जीवों का घात होता हो तथा जो पदार्थ भले पुरुषों के सेवन करने योग्य न हों या नशाकारक अथवा अस्वास्थ्यकर हों, वे सब अभक्ष्य हैं। इन अभक्ष्यों को पाँच भागों में बांटा जाता है।

सुबोध – कौन-कौन से ?

प्रबोध – 1. त्रसघात 3. अनुसेव्य 5. अनिष्ट
2. बहुघात 4. नशाकारक

जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो उन्हें त्रसघात कहते हैं, जैसे पंच उदुम्बर फल। इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं, इन्हें कभी नहीं खाना चाहिए।

जिन पदार्थों के खाने से बहुत (अनंत) स्थावर जीवों का घात होता हो उन्हें बहुघात कहते हैं। समस्त कंदमूल जैसे आलू, गाजर, मूली शकरकंद, लहसन, प्याज आदि पदार्थों में अनंत स्थावर निगोदिया जीव रहते हैं। इनके खाने से अनंत जीवों का घात होता है, अतः इन्हें भी नहीं खाना चाहिए।

सुबोध – और अनुपसेव्य ?

प्रबोध – जिनका सेवन उत्तम पुरुष बुरा समझें, वे लोकनिंद्य पदार्थ ही अनुपसेव्य हैं, जैसे लार, मल-मूत्र आदि पदार्थ।

अनुपसेव्य पदार्थों का सेवन लोकनिंद्य होने से तीव्र राग के बिना नहीं हो सकता है, अतः वह भी अभक्ष्य है।

सुबोध – और नशाकारक ?

प्रबोध – जो वस्तुएँ नशा बढ़ाने वाली हों, उन्हें नशाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे शराब, अफीम, भांग, गांजा, तम्बाकू आदि। अतः इनका भी सेवन नहीं करना चाहिए।

तथा जो वस्तु अनिष्ट (हानिकारक) हो, वह भी अभक्ष्य है, क्योंकि नुकसान करने वाली चीज को जानते हुए भी खाने का भाव अति तीव्र राग भाव हुये बिना नहीं होता, अतः वह त्याग करने योग्य है।

सुबोध – अच्छा, आज से मैं भी किसी भी अभक्ष्य पदार्थों को काम में नहीं लूँगा (भक्षण नहीं करूँगा)। मैं तुम्हारा उपकार मानता हूँ, जो तुमने मुझे अभक्ष्य भक्षण के महापाप से बचा लिया।

प्रश्न –

1. अभक्ष्य किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?
2. अनुपसेव्य से क्या समझते हो ? उसके सेवन से हिंसा कैसे होती है ?
3. किन्हीं चार बहुघात के नाम गिनाइये ?
4. नशाकारक अभक्ष्य से क्या समझते हो ?

———

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पाठ छठवाँ

द्रव्य-गुण-पर्याय

छात्र — 'गुरुजी, आज अखबार में देखा था कि अब ऐसे अणुबम बन गये हैं कि यदि लड़ाई छिड़ गई तो विश्व का नाश हो जायेगा।

अध्यापक — क्या विश्व का भी कभी नाश हो सकता है ? विश्व तो छह द्रव्यों के समुदाय को कहते हैं और द्रव्यों का कभी नाश नहीं होता है, मात्र पर्याय पलटती है।

छात्र — विश्व तो द्रव्यों के समूह को कहते हैं और द्रव्य ?

अध्यापक — गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

छात्र — मन्दिरजी में सूत्रजी के प्रवचन में तो सुना था कि द्रव्य, गुण और पर्यायवान होता है (गुणपर्ययवद् द्रव्यम्)।

अध्यापक — ठीक तो है, गुणों में होने वाले प्रति समय के परिवर्तन को ही तो पर्याय कहते हैं। अतः द्रव्य को गुणों का समुदाय कहने में पर्यायें आ ही जाती हैं।

छात्र — गुणों के परिणमन को पर्याय कहते हैं, यह तो समझा, पर गुण किसे कहते हैं ?

अध्यापक — जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों (प्रदेशों) में और उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं (पर्यायों) में रहता है, उसको गुण कहते हैं। जैसे ज्ञान आत्मा का गुण है, वह आत्मा के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

समस्त प्रदेशों में तथा निगोद से लेकर मोक्ष तक की समस्त हालतों में पाया जाता है। अतः आत्मा को ज्ञानमय कहा जाता है।

छात्र — आत्मा में ऐसे कितने गुण हैं ?

अध्यापक — आत्मा में ज्ञान जैसे अनंत गुण हैं। आत्मा में ही क्या समस्त द्रव्यों में, प्रत्येक द्रव्य में अपने-अपने अलग-अलग अनंत गुण हैं।

छात्र — तो हमारी आत्मा अनंत गुणों का भण्डार है ?

अध्यापक — भण्डार क्या है ? ऐसा थोड़े ही है कि आत्मा अलग हो और गुण उसमें भरे हों, जो उसे गुणों का भण्डार कहें, वह तो गुणमय ही है, वह तो गुणों का अखण्ड पिण्ड है।

छात्र — वे अनंत गुण कौन-कौन से हैं ?

अध्यापक — क्या बात करते हो, क्या अनंत भी गिनाये या बताए जा सकते हैं।

छात्र — कुछ तो बताइये ?

अध्यापक — गुण दो प्रकार के होते हैं, सामान्य और विशेष। जो गुण सब द्रव्यों में रहते हैं, उनको सामान्य गुण कहते हैं और जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्य में हों, उन्हें विशेष गुण कहते हैं। जैसे अस्तित्व गुण सब द्रव्यों में पाया जाता है, अतः वह सामान्य गुण हुआ और ज्ञान गुण सिर्फ आत्मा में ही पाया जाता है, अतः जीव द्रव्य का विशेष गुण हुआ।

छात्र — सामान्य गुण कितने होते हैं ?

अध्यापक — अनेक, पर उनमें छः मुख्य हैं — अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी भी अभाव (नाश) न हो उसे अस्तित्व गुण कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्व गुण है, अतः प्रत्येक द्रव्य की सत्ता स्वयं से है, उसे किसी ने बनाया नहीं है और न ही उसे कोई मिटा ही सकता है क्योंकि वह अनादि अनंत है।

इसी अस्तित्व गुण की अपेक्षा तो द्रव्य का लक्षण 'सत्' किया जाता है, ''सत् द्रव्यलक्षणम्'' और सत् का कभी विनाश नहीं होता तथा असत् का कभी उत्पाद नहीं होता। मात्र पर्याय पलटती है।

छात्र — और वस्तुत्व.....?

अध्यापक — जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थ क्रिया (प्रयोजनभूत क्रिया) हो उसे वस्तुत्व गुण कहते हैं। वस्तुत्व गुण की मुख्यता से ही द्रव्य को वस्तु कहते हैं।

कोई भी वस्तु लोक में पर के प्रयोजन की नहीं है, पर प्रत्येक वस्तु अपने-अपने प्रयोजन से युक्त है,क्योंकि उसमें वस्तुत्व गुण है।

छात्र — द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

अध्यापक — जिस शक्ति के कारण द्रव्य की अवस्था निरन्तर बदलती रहे, उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं। द्रव्यत्व गुण की मुख्यता से वस्तु को द्रव्य कहते हैं। एक द्रव्य में परिवर्तन का कारण कोई दूसरा द्रव्य नहीं है क्योंकि उसमें द्रव्यत्व गुण है, अतः उसे परिणमन करने में पर की अपेक्षा नहीं है।

छात्र — इन तीनों गुणों में अन्तर क्या हुआ ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अध्यापक – अस्तित्व गुण तो मात्र "है" यह बतलाता है, वस्तुत्व गुण "निरर्थक नहीं है" यह बताता है और द्रव्यत्व गुण "निरन्तर परिणमनशील है" यह बताता है।

छात्र – प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं ?

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय हो उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

छात्र – बहुत-सी वस्तुएँ बहुत सूक्ष्म होती हैं, अतः वे समझ में नहीं आ सकतीं क्योंकि वे दिखाई ही नहीं देती हैं। जैसे हमारी आत्मा ही है, उसे कैसे जानें, वह तो दिखाई देती ही नहीं है।

अध्यापक – भाई ! प्रत्येक द्रव्य में ऐसी शक्ति है कि वह अवश्य ही जाना जा सकता है, यह बात अलग है कि वह इन्द्रियज्ञान द्वारा पकड़ में न आवे। जिनका ज्ञान पूरा विकसित हुआ है उनके ज्ञान (केवलज्ञान) में सब कुछ आ जाता है और अन्य ज्ञानों में अपनी-अपनी योग्यतानुसार आता है। अतः जगत को कोई भी पदार्थ अज्ञात रहे ऐसा नहीं बन सकता है।

छात्र – अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं।

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है, अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो जाता, एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं होता और द्रव्य में रहने वाले अनंत गुण बिखर कर अलग-अलग नहीं हो जाते, उसे अगुरुलुघत्व गुण कहते हैं।

छात्र – और प्रदेशत्व.....?

अध्यापक – जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है उसको प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

छात्र – सामान्य गुण तो समझ गया पर विशेष गुण और समझाइये ?

अध्यापक – बताया था न कि जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्यों में ही रहते हैं वे विशेष गुण हैं। जैसे जीव के ज्ञान, दर्शन, चारित्र सुख आदि। पुद्गल में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि।

छात्र – द्रव्य, गुण, पर्याय के जानने से लाभ क्या है ?

अध्यापक – हम तुम भी तो सब जीव द्रव्य हैं और द्रव्य गुणों का पिण्ड होता है, अतः हम भी गुणों के पिण्ड हैं। ऐसा ज्ञान होने पर "हम दीन गुणहीन हैं" – ऐसी भावना निकल जाती है तथा मेरे में अस्तित्व गुण है अतः मेरा कोई नाश नहीं कर सकता है, ऐसा ज्ञान होने पर अनंत निर्भयता आ जाती है।

ज्ञान हमारा गुण है, उसका कभी नाश नहीं होता। अज्ञान और राग-द्वेष आदि स्वभाव से विपरीत (विकारी पर्याय) हैं, इसलिए आत्मा के आश्रय से उनका अभाव हो जाता है।

प्रश्न –

1. द्रव्य किसे कहते हैं ?
2. गुण किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?
3. सामान्य गुण किसे कहते हैं ? वे कितने हैं ? प्रत्येक की परिभाषा लिखिए।
4. विशेष गुण किसे कहते हैं ? जीव और पुद्गल के विशेष गुण बताइए।
5. पर्याय किसे कहते हैं ?
6. द्रव्य, गुण, पर्याय समझने से क्या लाभ है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पाठ सातवाँ

भगवान नेमिनाथ

बहिन – भाई साहब ! सुना है भगवान नेमिनाथ अपनी पत्नी राजुल को बिलखती छोड़कर चले गये थे।

भाई – भगवान नेमिनाथ तो बालब्रह्मचारी थे। उनकी तो शादी ही नहीं हुई थी। अतः पत्नी को छोड़कर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

बहिन – फिर लोग ऐसा क्यों कहते हैं ?

भाई – बात यह है कि नेमिकुमार जब राजकुमार थे तब उनकी सगाई जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की पुत्री राजुल (राजमती) से हो गई थी। पर जब नेमिकुमार की बारात जा रही थी तब मरणासन्न निरीह मूक पशुओं को देख, संसार का स्वार्थपन और क्रूरपन लक्ष्य में आते ही, उनको संसार और भोगों से वैराग्य हो गया था। वे आत्मज्ञानी तो थे ही, अतः उसी समय समस्त बाह्य परिग्रह माता-पिता, धन-धान्य, राज्य आदि तथा अंतरंग परिग्रह राग-द्वेष का त्यागकर नग्न दिगम्बर साधु हो गये थे। बारात छोड़कर गिरनार की तरफ चले गये थे।

इसी कारण लोग कहते हैं कि वे पत्नी राजुल को छोड़ गये।

बहिन – जब नेमिनाथ चले गये फिर...राजुल की शादी...?

भाई – नहीं बहिन ! राजुल भी तत्त्वप्रेमी राजकुमारी थी। उक्त घटना का निमित्त पाकर राजुल की आत्मा भी वैरागी हो गई। उनके पिताजी ने उन्हें बहुत समझाया पर वे फिर शादी करने को राजी नहीं हुईं।

बहिन – यह तो बहुत बुरा हुआ।

भाई – बुरा क्या हुआ ! राग से विराग की ओर जाना क्या बुरा है ?

बहिन – तो क्या फिर वे जीवन भर पिता के घर ही रहीं।

भाई – नहीं बहिन ! बेटी जीवन भर पिता के घर नहीं रहती। उन्हें तो वैराग्य हो गया था न। उन्होंने भोगों की असारता का अनुभव किया तथा ज्ञानानन्दस्वभावी राग-द्वेष के विकार से रहित आत्मा का अनुभव किया और अर्जिका का व्रत लेकर आत्मसाधना में लीन हो गईं।

बहिन – ये नेमिनाथ कौन थे ?

भाई – सौरीपुर के राजा समुद्रविजय के राजकुमार थे, श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। इनकी माता का नाम शिवादेवी था। ये बाईसवें तीर्थंकर थे। अन्य तीर्थंकरों के समान इनका भी जन्मकल्याणक बड़े ही उत्साह के साथ मनाया गया था।

आत्मबल के साथ-साथ उनका शारीरिक बल भी अतुल्य था।

उन्होंने राजकाज और विषयभोग को अपना कार्यक्षेत्र न बनाकर गिरनार की गुफाओं में शान्ति से आत्म-साधना करना ही अपना ध्येय बनाया। उन्होंने समस्त जगत से अपने उपयोग को हटाकर एकमात्र ज्ञानानन्द स्वभावी अपनी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

आत्मा में लगाया। आत्मज्ञानी तो वे पहिले से थे ही, आत्म-स्थिरता रूप चारित्र की श्रेणियों में बढ़ते हुए दीक्षा के 56 दिन बाद आत्मसाधना की चरम परिणति क्षपक श्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) प्राप्त किया। तदनन्तर करीब सात सौ वर्ष तक लगातार समवशरण सहित सारे भारतवर्ष में उनका विहार होता रहा तथा उनकी दिव्यध्वनि द्वारा तत्त्व-प्रचार होता रहा।

अन्त में गिरनार पर्वत से ही एक हजार वर्ष की आयु पूरी कर मुक्ति प्राप्त की।

बहिन – तो गिरनारजी "सिद्धक्षेत्र" इसीलिए कहलाता होगा? हाँ, गिरनार पर्वत नेमिनाथ की निर्वाणभूमि ही नहीं, तपो-भूमि भी है। राजुल ने भी वहीं तपस्या की थी तथा श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार और शम्बुकुमार भी वहीं से मोक्ष गये थे।

जैन समाज में शिखरजी के पश्चात् गिरनार सिद्धक्षेत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न –

1. भगवान नेमिनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. भगवान नेमिनाथ की तपो-भूमि और निर्वाण-भूमि का परिचय दीजिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

पाठ आठवाँ

जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भंग तरंगनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है॥१॥
या जगमंदिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्री जिन की धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत् प्रकाशन हारी॥
तो किस भांति पदारथ पांति, कहाँ लहते रहते-अविचारी।
या विधि संत कहें धनि हैं, धनि हैं जिन वैन बड़े उपकारी॥२॥

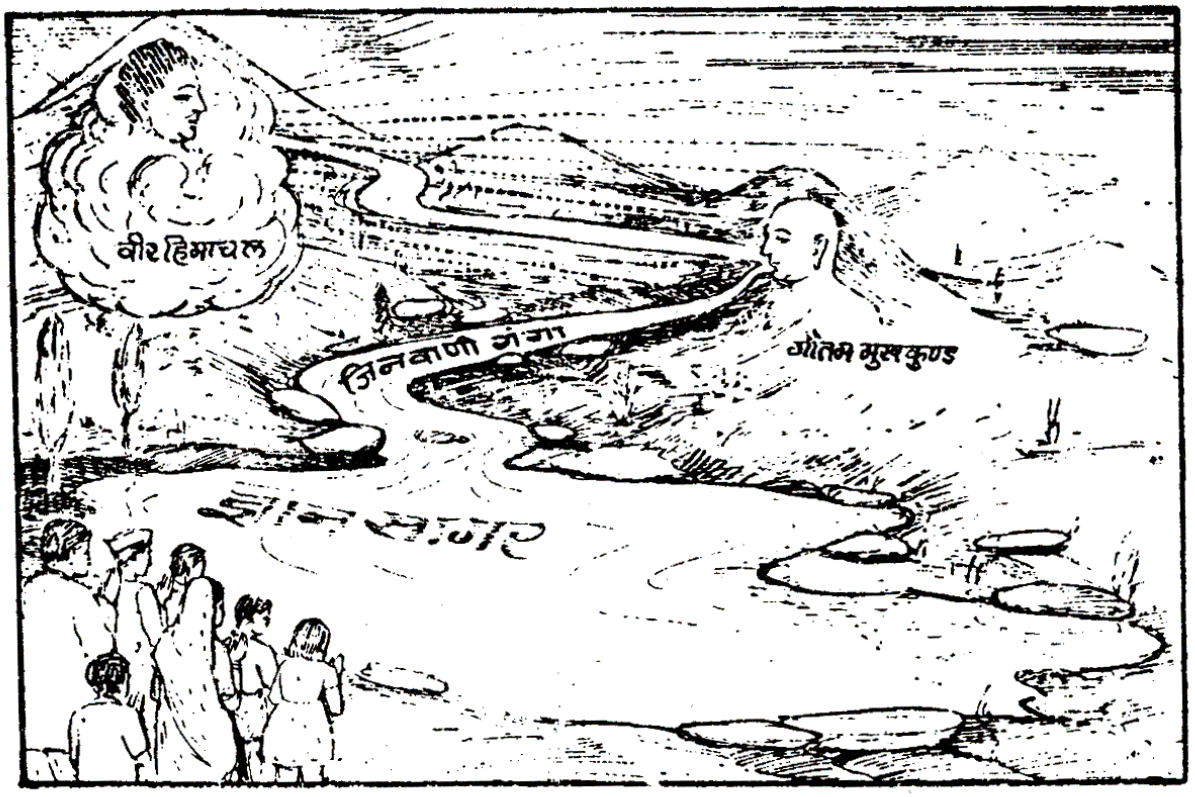

यह जिनवाणी की स्तुति है। इसमें दीपशिखा के समान अज्ञानांधकार को नाश करने वाली पवित्र जिनवाणी-रूपी गंगा को नमस्कार किया गया है।

जिनवाणी अर्थात् जिनेन्द्र भगवान द्वारा दिया गया तत्त्वोपदेश, उनके द्वारा बताया गया मुक्ति का मार्ग।

हे जिनवाणी-रूपी पवित्र गंगा ! तुम महावीर भगवान रूपी हिमालय पर्वत से प्रवाहित होकर गौतम गणधर के मुखरूपी कुण्ड में आई हो। तुम मोहरूपी महान् पर्वतों को भेदती हुई जगत् के अज्ञान और ताप (दु:खों) को दूर कर रही हो। सप्तभंगी रूप नयों की तरंगों से उल्लसित होती हुई ज्ञानरूपी समुद्र में मिल गई हो।

ऐसी पवित्र जिनवाणी-रूपी गंगा को मैं अपनी बुद्धि और शक्ति अनुसार अञ्जलि में धारण करके शीश पर धारण करता हूँ॥1॥

इस संसाररूपी मंदिर में अज्ञानरूपी घोर अंधकार छाया हुआ है। यदि उस अज्ञानांधकार को नष्ट करने के लिए जिनवाणी रूपी दीपशिखा नहीं होती तो फिर तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप किसप्रकार जाना जाता ? वस्तुस्वरूप अविचारित ही रह जाता। अत: संत कवि कहते हैं कि जिनवाणी बड़ी ही उपकार करने वाली है, जिसकी कृपा से हम तत्त्व का सही स्वरूप समझ सके।।2॥

मैं उस जिनवाणी को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न –

1. जिनवाणी स्तुति की कोई चार पंक्तियाँ अर्थ सहित लिखिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

महावीर वन्दना

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

जो मोह माया मान मत्सर मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी ध्यान धारण धीर हैं॥
जो तरण-तारण भव-निवरण, भव जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं॥1॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल अचल केवलज्ञान में॥
युगपद् विशद सकलार्थ झलकें ध्वनित हो व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में॥2॥

जिनका परम पावन चरित जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में गणधर न पावें पार हैं॥
बस वीतराग-विज्ञान ही जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को वंदना शत बार है॥3॥

जिनके विमल उपदेश में सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका जगत में विख्यात है॥
जिसने बताया जगत को प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई है अणु-अणु स्वयं में लीन है॥4॥

आतम बने परमातमा हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी महावीर के सन्देश में॥5॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण,
पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी,
पर से कुछ भी संबंध नहीं।।१।।

मैं रंग-राग से भिन्न,
भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड चैतन्यपिण्ड,
निज रस में रमने वाला हूँ।।२।।

मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता,
मुझ में पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं।।३।।

मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक,
पर-परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ।।४।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com